

अरविन्द की योग-साधना

□ कन्हैयालाल राजपुरोहित

पाण्डिचेरी के एकान्तवास में निरन्तर चालीस वर्षों तक एक महत् उद्देश्य से की गयी महायोगी श्री अरविन्द की योग-साधना भारत की देदीप्यमान किन्तु अपने वास्तविक स्वरूप की दृष्टि से किञ्चित् विस्मृत आध्यात्मिकता को उद्घाटित करने वाली एक ऐसी विलक्षण यात्रा थी जिसका अभीष्ट व्यक्तिगत मुक्ति का संकुचित लक्ष्य न होकर इस मर्त्यलोक को दिव्य चेतना की आभा से युक्त करना था ताकि तमस, जड़ता एवं क्षुद्र अहं से आवेष्टित यह मानव जीवन दिव्यता के उच्च धरातल पर अवस्थित हो सके। अपने स्वरूप, पद्धति एवं चरम लक्ष्य सभी दृष्टियों से उनकी साधना अद्वितीय थी। सम्पूर्ण मानव-समाज की भवितव्यता को अपने कलेवर में समेटने का लक्ष्य लेकर चलने वाली इस साधना व साधक के अत्युच्च महत्वाकांक्षी स्वरूप का अनुमान अरविन्द-योग के अध्येता एवं मनीषी श्री आर. आर. दिवाकर के इन शब्दों से लगाया जा सकता है—

“वे एक ऐसे कवि के समान थे जो उस समय तक सन्तुष्ट नहीं होता जब तक मानवीय चेतना के एक महाकाव्य की रचना नहीं कर दे। वे एक ऐसे चित्रकार के समान थे जिसके लिए अखिल दिगन्त कैनवास और इन्द्रधनुष मसिपात्र थे। वे एक ऐसे वास्तुशिल्पी के समान थे जिसका लक्ष्य एक ऐसे मन्दिर का निर्माण करना था जिसमें मानवता के आराध्यदेव विराजमान होंगे।”^१

योग का अभिप्राय

श्री अरविन्द की साधना के वैशिष्ट्य व लक्ष्य का सांगोपांग निदर्शन करने हेतु योग के अर्थ को समझना समीचीन होगा। संस्कृत की 'युज्' धातु से व्युत्पन्न योग शब्द के अर्थ हैं—संयुक्त करना, एक होना, सम्मिलित होना अर्थात् योग संयुक्त होने, एक होने की प्रक्रिया का नाम है। इसका तात्पर्य उस विधि या तकनीक से भी है जो जीवात्मा के विश्वात्मा से मिलने के पथ को प्रशस्त करती है। ऋग्वेद में योगोल्लेख प्रचुर मात्रा में हुआ है। उपनिषदों में कठोपनिषद् में 'योगनिधि' का सन्दर्भ आया है, जब यम नचिकेता को गुह्य विद्या प्रदान करते हैं। इसका उद्भव चाहे कुछ भी हो, महत्वपूर्ण बात यह है कि मस्तिष्क व चेतना की एकाग्रता एवं नियन्त्रण, रहस्यात्मक शक्तियों की प्राप्ति एवं सर्वोच्च आध्यात्मिक सिद्धि की प्राप्ति के साधन, विधि एवं तकनीक के रूप में योग भारत के सुदूर अतीत में व्यवहृत था।

कला एवं विज्ञान दोनों

योग एक विज्ञान एवं कला दोनों है। यह उस स्थिति में विज्ञान है जब वह चित्तन, अनुभूति व एषणा के मानवीय उपकरणों की प्रकृति व चेतना के अन्य क्रियाकलापों की खोजबीन करता है। यह एक कला भी है क्योंकि यह मस्तिष्क को पूर्णरूपेण नियन्त्रित करने के व्यावहारिक तरीकों का, उसे 'अहं' तथा 'स्व' से निरासक्त करके तथा सच्चिदानन्द के साथ आत्मा के सम्मिलन को सम्भाव्य बनाने का ज्ञान प्रदान करता है।

योग अन्तरात्मा विषयक एक सरल सिद्धान्त पर आधारित है। यह अन्तरात्मा व्यक्ति के अहं, चेतना व उसके स्वरूप परिवर्तनों से अप्रभावित एवं स्वतन्त्र होती है। वह आत्मा प्रकाशित होती है और मानवीय चेतना की आन्तरिक क्रियाशीलता के अन्तर्दृशी ज्ञान से अनुभूत की जा सकती है। इस अन्तरात्मा-पुरुष की खोज करना जो निर्गुण है जिसकी प्रकृति आनन्दमयी है—उस आत्मा के साथ एकाकार होना योग का उद्देश्य है। योग के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के पतञ्जलि के अनुसार आठ सोपान हैं, अतः इसे अष्टांग योग कहते हैं। वे हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। राजयोग, हठयोग, ज्ञानयोग, मन्त्रयोग, लययोग आदि के नाम से अन्य योग-मार्ग भी प्रचलित हैं। सभी योग-मार्गों का अन्तिम लक्ष्य एक ही है—ब्रह्म या सर्वोच्च आत्मा के साथ एकात्मकता एवं संयुक्तावस्था के विशुद्ध आनन्द का सतत् रूप से अनुभव करना।



श्री अरविन्द-योग

श्री अरविन्द के योग का प्रारम्भ यद्यपि प्राणायाम से और सीधे से राजयोग के रूप में हुआ, बाद में प्रत्येक योग-मार्ग में उनके व्यापक अनुभवों एवं उनके द्वारा सभी योग-पद्धतियों के संश्लेषण के बाद पूर्णयोग के रूप में विकसित हुआ।

अपनी कृतियों में श्री अरविन्द एक स्थल पर लिखते हैं कि सम्पूर्ण जीवन ही एक योग है। उनके अपने मामले में अक्षरशः ऐसा ही था। अपने महत् उद्देश्य की चेतना तथा एक उच्च आध्यात्मिक जीवन की अभिज्ञा के प्रारम्भ से ही उन्होंने एक अभ्यासरत योगी का जीवन बिताया जिसमें किसी प्रकार के शैथिल्य व कमी के लिए कोई स्थान नहीं था। उनकी योग-साधना अपने पद्धति-वैशिष्ट्य एवं सिद्धि की दृष्टि से परिपूर्णता तो पाण्डिचेरी में प्राप्त करती है किन्तु इसका प्रारम्भ तो उनके इंग्लैण्ड प्रवास के पश्चात् भारतभूमि पर पदार्पण के तुरन्त बाद ही गया था। अपोलो बन्दर पर असीम मानसिक शान्ति का अनुभव भावी महायोगी की साधना का प्रथम सोपान था जिसके अगले महत्वपूर्ण चरण लेले की सहायता से योगाभ्यास, अलीपुर कारा में गीतोक्त योग की साधना एवं वासुदेव-दर्शन व विवेकानन्द-वाणी का श्रवण, चन्द्रनगर में वेदोक्त देवियों का दर्शन आदि उनके पूर्णयोग की पूर्व पीठिका हैं।

उनकी साधना का विश्लेषण आसान नहीं है। दिनकर की यह उक्ति उचित ही प्रतीत होती है कि “भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में आइन्स्टीन के सापेक्षवाद की व्याख्या जितनी कठिन है, अध्यात्म के क्षेत्र में अरविन्द के अतिमानस व अतिमानव की व्याख्या भी उतनी ही दुरूह सिद्ध हुई है।”^२

गुरु बिना साधना

श्री अरविन्द की योग-साधना इस रूप में भी परम्परा से हटकर थी कि उन्हें सामान्य अर्थों में किसी गुरु का मार्गदर्शन प्राप्त नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखा है—“मुझे एक आन्तरिक प्रेरणा हुई और मैंने योगाभ्यास किया। एक विशेष स्तर पर, जब मैं आगे बढ़ने में असमर्थ था, लेले ने मेरी किञ्चित् सहायता की। जब मैं पाण्डिचेरी आया मुझे अपनी साधना के लिए अन्तःकरण से कार्यक्रम प्राप्त हुआ।”^३

अरविन्दीय साधना का महत् उद्देश्य

श्री अरविन्द का उद्देश्य था—मानव-जीवन को सर्वांशतः रूपान्तरित कर उसमें अतिमानसिक ज्योति की प्रतिष्ठा करना। उनके सामने एक व्यक्ति की मुक्ति का प्रश्न नहीं था, यह था समग्र मानवता की जीवन-मुक्ति का प्रश्न, यह थी सम्पूर्ण मानव-जाति के विकास और रूपान्तर की समस्या। ऐसी समस्या जिसके हल के लिए अब तक किसी ने प्रयत्न नहीं किया है। उनका योग प्राचीन भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग से भिन्न है। यह मन से परे अतिमानस में प्रवेश कर उसे इस पृथ्वी पर उतार लाना चाहता है जिसके द्वारा मनुष्य की बुद्धि, जीवन और शरीर का रूपान्तर हो जाय—हमारे अन्नमय, मनोमय, प्राणमय कोषों का परिशोधन कर उन्हें दिव्य बना सके।

किन्तु उनका तिरस्कार इसे स्वीकार्य नहीं है। वे जिस योग और साधना की बात करते हैं उसमें स्थूलतम भौतिक से लेकर सूक्ष्म चैतन्य तक सभी साधन हैं। जीन हर्बर्ट ने लिखा है—“अरविन्द की शिक्षा की एक विशिष्टता यह है कि वे जीवन के किसी भी पक्ष को, यहाँ तक कि पौद्गलिक भौतिक तत्त्व की भी उपेक्षा नहीं करते। उनका कथन है कि दिव्य शक्ति को सबसे निचले स्तर तक उतरना पड़ेगा और सब कुछ का आध्यात्मिक रूपान्तरण करना होगा क्योंकि तभी उसकी क्रिया सही अर्थों में पूर्ण हो सकती है।”^४

उनकी साधना जीवननिष्ठ थी। जीवन से पृथक् होकर योग उनकी दृष्टि में अर्थहीन है। किन्तु जीवन में योग उतरेगा कैसे? श्री अरविन्द का योग जीवन को ईश्वरीय कार्य के लिए ईश्वरीय यन्त्र में बदल देना चाहता है। वे मानते हैं कि दिव्य चेतना की उपलब्धि, दिव्य चेतना द्वारा मानवीय चेतना का स्वीकरण, शान्ति, प्रकाश, प्रेम, शक्ति और आनन्द की प्राप्ति और सर्वोपरि स्वयं को ईश्वरीय इच्छाशक्ति और क्रिया के लिए पूर्ण तैयार यन्त्र के रूप में ढाल देना ही इस योग का उद्देश्य है।

प्रायः अध्यात्म-पथ के पथिक सांसारिक हलचलों के प्रति पूर्ण उदासीन रहकर या उन्हें त्याज्य समझकर सामान्य लोगों से परे स्वनिर्मित अलग वातावरण में ही खोये रहते हैं। यद्यपि प्रकट रूप में श्री अरविन्द बाह्य जगत से सर्वथा दूर थे, एक रहस्य के आवरण से आवेष्टित थे किन्तु उनकी अन्तःसलिला इस भौतिक जगत के दिव्य रूपान्तरण के उद्देश्य की ओर ही अभिमुख थी। इस दिव्य प्रक्रिया की पूर्ति हेतु उन्होंने अत्यन्त निष्ठा से कार्य किया। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में अटूट लगन से काम करता है, कठिनाइयों में भी आनन्द मानता है ठीक उसी प्रकार रूपान्तर की प्रक्रिया में श्री अरविन्द ने एक सच्चे वैज्ञानिक के धैर्य, दार्शनिक की दृष्टि, कवि की कल्पना और निरन्तर श्रमरत श्रमिक का कठोर अक्लान्त श्रम कर अपना प्रयोग किया। वे जीवन में रहकर जीवन को बदलना चाहते थे।

दिलीपकुमार राय ने अपनी पुस्तक 'तीर्थकर' में अरविन्द से एक साक्षात्कार का उल्लेख किया है, जिसमें उनकी साधना का उद्देश्य स्पष्टतः उभरा है। उनके शब्दों में—

“एक समय मैं भी अपने योग के माध्यम से संसार के रूप को बदलना चाहता था। मैं मानवता की मूलभूत प्रकृति व प्रवृत्तियों को बदलना व उन सभी बुराइयों का निराकरण करना चाहता था जो मनुष्यों को प्रभावित करती हैं। इसी उद्देश्य और दृष्टिकोण से मैं प्रारम्भ में योग की ओर प्रवृत्त हुआ तथा मैं पाण्डिचेरी आया क्योंकि अपनी योग-साधना यहाँ करने का मुझे ऊपर से निर्देश प्राप्त हुआ था।”⁴

साधनापथ के पथिक हेतु आवश्यक योग्यताएँ

उपर्युक्त महान् उद्देश्य से प्रेरित अरविन्दीय योग-साधना के लिए स्वस्थ मस्तिष्क, शक्तिशाली प्राणिक और शारीरिक व्यक्तित्व अत्यन्त आवश्यक अर्हताएँ हैं। ऐसा बताना उस भ्रान्त मान्यता का निवारण करने हेतु आवश्यक है जो इसे एक सीधा-सपाट मार्ग समझते हैं अथवा यह मानते हैं कि योग की ओर स्वभावतया वे लोग उन्मुख होते हैं जो भावुक हैं या जीवन की विपदाओं का सामना करने में असमर्थ हैं। श्री अरविन्द-योग इस प्रकार के शिथिल बुद्धि वाले लोगों के लिए नहीं था। मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ लोगों को ही वे अपने योगमार्ग में प्रवेश की अनुमति देते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है—“मेरा योग मस्तिष्क के पूर्ण सन्तुलन की माँग करता है, इसलिए जिनके मन में ऊपरी तौर पर हल्की इच्छा जागी हो वे इधर न आयें क्योंकि इस योग में उच्चतर चेतना के आवरण के लिए उद्घाटित होने की सम्भावना के साथ ही प्राणिक स्तर की शक्तियों के भी घुस आने की सम्भावना रहती है। इसलिए यदि किसी व्यक्ति के पास पूर्ण बौद्धिक सन्तुलन नहीं है तो उन गलत शक्तियों द्वारा अधिकृत होने की आशंका रहती है।”

वे पूरी सृष्टि को आध्यात्मिक आधारों पर अवस्थित देखना चाहते हैं अतः साधक के लिए एक सतत तर्कपूर्ण एवं जागरूक मस्तिष्क भी अनिवार्य है। उनके अनुसार—“सत्य की खोज के लिए एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण मौलिक आवश्यकता है समीक्षात्मक तर्क क्षमता, करीब-करीब हठी किस्म का ऐसा दिमाग जो हर मुखौटे को चीर सकता हो और चालू बातों, विचारों व मतों को अस्वीकार कर सकता हो। व्यक्ति ऐसे साहस से युक्त होना चाहिए कि वह किसी भी प्रकार के धोखे व आवरण से भिन्न सत्य को देख सके।”⁵

गलदश्रु भक्ति घातक

इसलिए अपने साधना-पथ में श्री अरविन्द निरन्तर सन्तुलन बनाये रखने की वाञ्छनीयता पर जोर देते हैं। भावुकता की अति तक पहुँची हुई वैष्णव-साधना के इसी कारण वे प्रबल विरोधी हैं। स्वयं भक्ति का विरोध उन्हें अभीष्ट नहीं था वरन् उसके साथ जुड़ी हुई गलदश्रु भावुकता का विरोध था, जो मस्तिष्क को असन्तुलित बना देती है। वे भक्ति के उस खतरे से आगाह करते हैं जो संवेगों के उच्छल वेग को जगाने का कारण होता है।

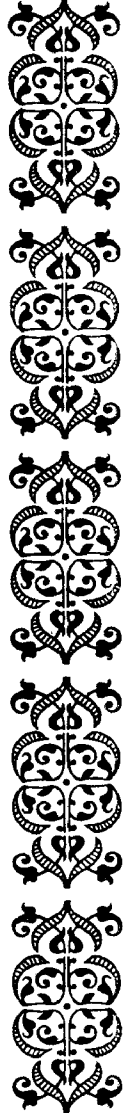
श्री अरविन्द-साधना का स्वरूप

स्वयं श्री अरविन्द द्वारा इधर-उधर छोड़े गये कुछ संकेतों तथा अन्य स्रोतों से हमें उनकी साधना की सामान्य दिशा, उन विभिन्न स्तरों का जिनसे वे गुजरे तथा समय-समय पर उनके द्वारा अपनाये गये परिष्करण, उनकी पद्धति के विशिष्ट लक्षण तथा अन्ततः उन अत्यधिक कठिन व कभी-कभी अतीव पीड़ाजनक स्थितियाँ जिनका उन्हें सामना करना पड़ा—आदि बातों का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

अज्ञात के अन्वेषण की अभिनव पद्धति

उनके अनुसार योग-साधना एक सर्वोच्च प्रकार का साहसिक अभियान तथा व्यक्ति के सम्पूर्ण अस्तित्व व आत्मा के साथ एक प्रयोग है। उनके मामले में यह बात विशेष रूप से घटित होती है क्योंकि उन्होंने सर्वथा नवीन आधारों का सृजन करके स्वयं को अध्यात्म क्षेत्र के अन्वेषित अज्ञातसिंधु की उत्ताल उर्मियों के हवाले करके बिना किसी गुरु की सहायता के खतरों से पूर्ण भीषण मार्गों को पार किया। सामान्यतः जब कोई व्यक्ति अध्यात्म-पथ का अनुकरण करता है तो उसे समस्त भौतिक सुखों का त्याग करना होता है एवं विविध मानसिक व नैतिक संघर्षों से गुजरना पड़ता है जिनकी कुछ झलक एक शब्द 'मर्मभेदी' से प्राप्त होती है। जब एक बार निर्णय ले लिया गया श्री अरविन्द पूर्ण निष्ठा एवं उद्देश्य की तीव्रानुभूति से अपने कार्य में जुट गये जो उनकी कार्यपद्धति की विशिष्टता थी।

उनकी साधना ने शनैः शनैः उन्हें अपनी आध्यात्मिक प्रगति में सहायता करना प्रारम्भ किया। उत्तरोत्तर इसका विकास मानवता के लिए योग के रूप में हुआ और अन्ततः उसने सार्वभौम योग के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया। वह शक्तिशाली ऊर्ध्वगामी विकास में सचेतन साझेदारी तथा दिव्य चेतना की ओर आरोहण बन गयी। यह स्पष्ट है कि श्री अरविन्द की साधना के इतिहास में योग का एक विशेष स्थान और महत्व है। यह उस अद्वितीय आध्यात्मिक प्रगति के साथ विकसित हुआ जिस पर उन्होंने बल दिया था। दिवाकर का कथन इस सम्बन्ध में अत्यन्त



सटीक है—“श्री अरविन्द के जीवन में योग शब्द का विकासक्रम महात्मा गांधी के जीवन में अहिंसा शब्द के गहराते व विस्तृत होते महत्व या गीता में ‘यज्ञ’ शब्द की महत्ता के समान था।”

योग-संश्लेषण का प्रयास (पूर्णयोग)

योग और उसकी क्षमता में श्री अरविन्द का विश्वास दिव्य में उनके विश्वास की भाँति ही गहन था। अपने अनुभवों से पुष्ट इसी विश्वास के सहारे वे अपनी साधना के एक बाद एक विभिन्न स्तरों को पार करते रहे। पाण्डिचेरी में अपनी साधना के प्रथम चार वर्षों में अरविन्द ने अपने “योग-संश्लेषण” का अभ्यास किया और तकनीक का पूर्ण विकास किया जो पूर्णयोग या इन्टिग्रल योग के नाम से विख्यात है। इसमें वस्तुओं का पूर्ण परिदृश्य और परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली बातों का भव्य समन्वय दिखाई पड़ता है। अपनी कष्टसाध्य साधना के द्वारा एक पूर्ण व्यक्तित्व का विकास एवं स्वयं में विद्यमान आन्तरिक समरसता की खोज करके श्री अरविन्द ने विविध क्षेत्रों में सामंजस्य स्थापना की कुंजी खोज ली। उनकी साधना एक पूर्णतर अनुभव के लिए तीव्र खोज थी जो आत्मा व पदार्थ, पुरुष व प्रकृति के वास्तविक द्वय को संयुक्त करने व समरस बनाने की साध थी।

उनकी साधना की अभिनव दिशा का आभास अपने अनुज वारीन को लिखे गये पत्र से होता है जो उन्होंने योग के क्षेत्र में उनके मार्गदर्शन हेतु लिखा था। उनके योग के साथ जुड़ा ‘पूर्ण’ विशेषण इस पत्र में व्यक्त उनके विचारों से भलीभाँति समझा जा सकता है। प्राचीन योग पद्धतियों की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं—पुराने योग में दोष यही था कि वह मन, बुद्धि को जानता, मन के भीतर ही अध्यात्म की अनुभूति पाकर सन्तुष्ट रहता, किन्तु मन खण्ड को ही आयत्त कर सकता है। वह अनन्त खण्ड को सम्पूर्ण नहीं पकड़ सकता। पुरातन योग प्रणालियाँ अध्यात्म व जीवन का सामंजस्य अथवा ऐक्य नहीं कर सकीं, जगत को माया या अनित्य लीला कहकर उड़ा देती हैं। फल हुआ है जीवन-शक्ति का ह्रास और भारत की अवनति।

श्री अरविन्द का योग उनके द्वारा अनुभूत चार सिद्धियों पर आधारित है—(१) देशकालातीत शान्त ब्रह्म की अनुभूति जो लेले के साथ साधना करते हुए प्राप्त हुई (२) विश्वचेतना अर्थात् सर्वत्र भगवान् दर्शन की अनुभूति जो अलीपुर जेल में प्राप्त हुई (३) परम सत् चेतना की अनुभूति जिसके दो पक्ष हैं—निष्क्रिय ब्रह्म और सक्रिय ब्रह्म (४) अतिमानसिक चैतन्य की अनुभूति जो सर्वोच्च सत् की अन्तिम उपलब्धि है। उनका योग उनकी इन चार अनुभूतियों के चौखम्बे पर आधारित है। इनकी सिद्धि की समस्त विधि और साधना, मार्ग और तरीके व खतरे उन्होंने स्पष्ट रूप से समझाये हैं।

साधना का प्रस्थान बिन्दु

योगी के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने से बहुत पहले अपनी पत्नी मृणालिनी देवी को लिखे गये एक पत्र में श्री अरविन्द की तीव्र आध्यात्मिक उत्कण्ठा का प्रकटीकरण हुआ है जिसमें परमात्मा से साक्षात्कार की इच्छा के उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर छा जाने की बात भी कही गयी है। इस पत्र में उन्होंने योग-साधना को अपना लक्ष्यपूर्ति का एक मात्र अवलम्ब बताते हुए साधना के प्रारम्भिक स्तर व विकास के विभिन्न चरणों की चर्चा की है। उन्होंने बताया कि योग के क्षेत्र में इच्छुक व्यक्ति को प्रवेश कैसे करना चाहिए।

प्रभु के प्रति पूर्ण समर्पण

वे कहते हैं कि आकांक्षी को हार्दिक प्रार्थनाभाव से परमात्मा के प्रति समर्पण करना चाहिए। प्रभु का तभी अवतरण होगा और वे समस्त कमियों को दूर कर भक्त को आशीर्वाद देंगे। यह वस्तुतः पूर्णयोग में पहला पाठ है जिसका बाद में अरविन्द ने क्रमशः सविस्तार प्रतिपादन किया है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि प्रभु का द्वार प्रवेश के लिए इच्छुक किसी व्यक्ति के लिए बन्द नहीं है। गहन प्रार्थना के माध्यम से प्रभु के चरणों में स्वेच्छिक हार्दिक समर्पण भक्त को परमात्मा से मिलाने में समर्थ होगा।

इस योगभूमि में प्रवेश पाने की पहली शर्त है **अभीप्सा**। क्या आपके भीतर इस सांसारिक जीवन से भिन्न एक उच्चतर जीवन की इच्छा है? यदि अभीप्सा है तो ईमानदारी से उसके लिए प्रयत्न करना होगा और ये दोनों ईश्वर, गुरु व मार्ग में विश्वास होने पर ही फलदायी हो सकती हैं। क्योंकि मार्ग की बाधाएँ डिगा सकती हैं इसलिए **समर्पण भाव** अत्यावश्यक है। ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण बाधाओं पर विजय दिला सकेगा। “इन चार कीलक और अर्गलाओं से सुसज्जित होकर आप निधड़क योगमार्ग में आगे बढ़ सकते हैं किन्तु साधना में गफलत आत्मघाती होती है, इसलिए निरन्तर सावधानी और चौकसी आवश्यक है।”

प्रथम सोपान—मस्तिष्क की नीरवता और शान्ति

श्री अरविन्द यह मानते हैं कि जब तक मानव-मन नीरव और शान्त नहीं होता तब तक किसी प्रकार का

योगाभ्यास सम्भव नहीं है। यह शान्ति दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है। सक्रिय रूप से मस्तिष्क को खाली करके या तटस्थरूप के मस्तिष्क में चलने वाली क्रिया का मात्र द्रष्टा रहते हुए। कठिन प्रतीत होने वाले इन कार्यों की कठिनाई प्रकृति को न समझने के कारण और बढ़ जाती है।

नीरवता प्राप्त करने का सीधा मार्ग है जो भी मन में प्रवेश कर रहा है, उसे पकड़ कर बाहर फेंकना। यही पद्धति श्री अरविन्द ने लेले के साथ साधना करते हुए अपनाई थी। वे स्वयं लिखते हैं “इसके लिए मैं लेले का अत्यधिक ऋणी हूँ कि उन्होंने इस सत्य का साक्षात्कार कराया। ध्यान के लिए बैठ जाओ, उन्होंने कहा, परन्तु कुछ भी सोचो नहीं, केवल अपने मन का निरीक्षण करो, तुम विचारों को उसके अन्दर आता देखोगे।.....बस मैं बैठ गया और वैसा ही किया। क्षण भर में मेरा मन उच्च पर्वत शिखर के निर्वात आकाश की भाँति शांत हो गया और तब मैंने देखा एक विचार, फिर दूसरा विचार बाहर से स्पष्ट रूप से आ रहा है। इसके पूर्व कि वे मेरे मस्तिष्क में घुसकर उसे अपने अधिकार में कर सकें मैंने इन्हें झटक कर दूर फेंक दिया और तीन दिन में ही उनसे मुक्त हो गया। उसी क्षण सिद्धान्ततः मेरे अन्दर का मनोमय पुरुष एक स्वतन्त्र प्रज्ञा किंवा विराट् मन बन गया जो विचारों के कारखाने के एक मजदूर की भाँति वैयक्तिक विचार के संकुचित घेरे में बँधा नहीं था बल्कि सत्ता के सैकड़ों स्तरों से ज्ञान ग्रहण करने लगा।”^{१०}

खालीपन क्या है ?

मस्तिष्क के खालीपन का मनोवैज्ञानिक स्वरूप क्या है ? उसका मूल तत्त्व क्या है ? इस विषय में वे कहते हैं—“मानसिक सत्ता का मूल पदार्थ एकदम शान्त है। कोई वस्तु उसे आन्दोलित नहीं कर सकती। विचार या वैचारिक क्रियाएँ जब उसमें प्रवेश करती हैं तो वैसा ही होता है मानो वायुहीन आकाश को पक्षी पार कर रहे हैं। यह उड़ता चला जाता है। कहीं कोई हलचल नहीं होती। कोई निशान नहीं पड़ता। मस्तिष्क का मूल ढाँचा ही इस प्रकार के तत्त्व से बना है जो शाश्वत और अक्षय शान्ति से निर्मित है। ऐसा मस्तिष्क जिसने यह नीरवता और शान्ति पा ली है, अपनी प्रक्रिया शुरू कर सकता है। यह प्रक्रिया निहायत सघन और शक्तिशाली होती है, तो भी मस्तिष्क अपनी मौलिक शान्ति बनाये रखता है।”

मस्तिष्क को नीरव व शान्त बनाने की इस प्रक्रिया से अरविन्दीय योग-साधना का प्रारम्भ होता है। इस शान्ति के लिए प्रयत्न आवश्यक है क्योंकि अधिकांश लोग अशान्त जीवन के इतने अभ्यस्त होते हैं कि यह शान्ति उन्हें भयभीत करने लगती है। उसे एक ठोस और व्यापक आधार देने के लिए आवश्यक है कि यह प्राणिक व शारीरिक स्तरों तक भी उतरे और सम्पूर्ण सत्ता को सराबोर कर दे। किन्तु यह दृष्टव्य है कि शान्ति सहजरूप से उपलब्ध हो जाती है, ऐसा नहीं है और यह भी नहीं कि एक बार उपलब्ध हो जाये तो सदैव बनी रहे। यह सतत् प्रयत्न की प्रक्रिया है।

मस्तिष्क के खालीपन का अर्थ शून्यता नहीं वरन् नीरवता और शान्ति है। नीरवता का अर्थ जीवन से निष्क्रिय होना नहीं है वरन् एक महत्तर चेतना को हस्तगत करना है। शान्त होने के लिए कार्य छोड़ने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उसकी परीक्षा क्रियाशीलता में ही होती है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने एक शिष्य को लिखा—“पुराने योग में जीवन से अलग होकर ईश्वर को पाना चाहते हैं। अतः वे कहते हैं कर्म छोड़ दो। इस नये का उद्देश्य ईश्वर तक पहुँचना और वहाँ से प्राप्त पूर्णता को जीवन में उतारना है। अतः हमारे लिए कर्म अनिवार्य है।”^{११}

चैत्य का उन्मीलन

प्रार्थना, आकांक्षा, भक्ति, प्रेम, समर्पण आदि साधना के इस प्रथम चरण के मुख्य सहायक तत्त्व हैं। इनके साथ ही उस सब कुछ को, जो इस साधना में बाधक हैं, अस्वीकृत करना आवश्यक है। उदाहरण के तौर पर अहंकार उनकी साधना में सबसे बड़ा विघ्नकारी तत्त्व माना गया है, जो सभी बुराइयों की जड़ है।

दूसरा चरण मस्तिष्क में ध्यान की एकाग्रता है जो बाद में सिर के ऊपर ध्यान में बदल जाती है। इसमें पहले शान्ति उतरती है अथवा शान्ति और शक्ति साथ-साथ। जब शान्ति भली-भाँति प्रतिष्ठित हो जाती है तब उच्चतर या दिव्य शक्ति अवतरित होकर हमारे भीतर क्रियाशील हो जाती है जिसे श्री अरविन्द चैत्यपुरुष का उन्मीलन कहते हैं। यह चैत्यपुरुष ईश्वरीय किरण या ज्योति है जिसके उदय के बाद मनुष्य का बौद्धिक अहं नष्ट हो जाता है इसलिए मस्तिष्क ईश्वरीय सत्य को अभिव्यक्त करने का साधन मात्र रह जाता है। जैसा कि पहले इंगित किया जा चुका है श्री अरविन्द-योग परमसत्ता के लिए निवेदित है, व्यक्तिगत मुक्ति हेतु नहीं अतः अहं-विसर्जन इस साधना की शाश्वत शर्त है।

योगाभ्यासी को जानना चाहिए कि उसके भीतर सक्रिय शक्ति निर्वैयक्तिक और अनन्त है। जब उसे यह ज्ञात हो जाता है तो चैत्यपुरुष उसकी सभी क्रियाओं का संचालन अपने हाथ में लेता है। हृदय के पीछे एक झिल्ली में छिपे इस चैत्यपुरुष को आसानी से प्राप्त नहीं किया जा सकता।



उन्मीलन कैसे

जब प्राणिक और मानसिक उद्वेग नष्ट हो जाते हैं, अहं का विसर्जन हो जाता है, मस्तिष्क की सीमाएँ जानकर व्यक्ति परम-चेतना के सम्मुख समर्पणभाव से नतशिर खड़ा हो जाता है तो हृदय-गुफा में छिपी यह ज्योति-किरण बाहर आ जाती है। आनन्द इसका प्रथम लक्षण है। एक ऐसा आनन्द जो उद्वेगहीन पर ठोस होता है। शान्त, गम्भीर, निःस्वार्थ, यही आनन्द चैत्यपुरुष के जागरण का प्रथम लक्षण है। एक सहज आनन्द और व्यापकता की भावना। चैत्यपुरुष की अवधारणा को समझाना कठिन भी है और सरल भी। सरल इसलिए कि 'सत्प्रेम' के अनुसार "एक शिशु भी इसे जानता है। कितनी निर्द्वन्ता से वह हँसता है क्योंकि वह अपने चैत्यपुरुष में ही रहता है। कठिन इसलिए कि ज्यों-ज्यों हम बड़े होते हैं, नाना प्रकार की भावनाओं, विचारों आदि के कारण वह स्वतोद्भूत चैत्यस्थिति नष्ट होने लगती है और तब हम अपनी आत्मा की बात करने लगते हैं।"^{१२}

ईश्वर-ज्योति से एकरूपता प्राप्ति

चैत्यपुरुष के उन्मीलन के लिए जो द्वार खुलता है—उसे श्री अरविन्द ऑपनिंग कहते हैं। चैत्यकेन्द्र का खुलना प्रमुखतः हमें वैयक्तिक ईश्वर से जोड़ता है। यह दिव्यता को आन्तरिक ढंग से सम्बद्ध करता है। यह मुख्य रूप प्रेम और भक्ति का स्रोत है। सिर के ऊपर केन्द्र का खुलना हमें पूर्ण दिव्य से सीधा जोड़ता है और हमारे भीतर दिव्य से चेतना को जन्म देता है। इसे नवजन्म या आध्यात्मिकजन्म कहा जा सकता है। जितना ज्यादा प्रेम और भक्ति से हृदय भरता है, जितना अधिक समर्पण होता है उतना ही पूर्ण साधना का विकास हो पाता है क्योंकि अवतरण और रूपान्तर का अर्थ ही है दिव्य चेतना से अधिक सम्पर्क और सायुज्यता।

यही साधना का मौलिक विचारतत्त्व है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इसमें हृदय चक्र और सिर के ऊपर से मानसिक चक्रों का खुलना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि हृदय चैत्यपुरुष के लिए खुला रहता है और मानसिक चक्र उच्चतर चेतना के लिए। कहना न होगा कि चैत्यपुरुष व उच्चतर चेतना का यह परस्पर सहयोग सिद्धि के लिए आवश्यक है।

तात्कालिक व चरम लक्ष्य

श्री अरविन्द की इस साधना के तात्कालिक व चरम लक्ष्य भिन्न-भिन्न थे। सर्वोच्च सत्ता का अनिर्वचनीय, अन्तर्दर्शी और संयोजक अनुभव इसका तात्कालिक लक्ष्य था। उन्होंने इसकी प्राप्ति की मूलभूत शर्तों को पूरा करने का प्रयत्न किया—जैसे नैतिक जीवन का उन्नयन, इच्छाओं व संवेगों का पूर्ण नियन्त्रण आदि। उनका चरम लक्ष्य संकुचित आत्म का प्रत्यक्ष ज्ञान, संवेदन, विचार तथा मानस के अन्य रूपान्तरणों से पृथक्करण तथा इसका वास्तविक आत्म से तादात्म्य स्थापित करना था जो समस्त सच्चे ज्ञान का आधार है। यह वास्तविक आत्म आत्मप्रकाशित, आत्मस्थित, अतिचैतन्य ब्रह्माण्डीय सत्य है। वे इस सबमें विश्वास करते थे और उनका दृढ़ विचार था कि इस सत्य की खोज उस अवस्था में नहीं की जानी चाहिए जब भौतिक जीवन में निराशा का सामना करना पड़े वरन् इसलिए कि यह मानवीय आत्मा की वास्तविक साध है।

श्री अरविन्द की मान्यता थी कि इस विधि से विकसित होना समस्त मानवीय चेतना की मूल प्रकृति है किन्तु उनकी दृष्टि में यह चरम अवस्था या योग का अन्तिम उद्देश्य नहीं है। उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि दिव्य सत्ता के साधन के रूप में कार्य करना आत्मा के विलीनीकरण या नीरवता से उच्चतर आध्यात्मिक स्थिति है। यही कारण था कि उनकी दृष्टि में उनका सक्रिय राजनैतिक जीवन उनकी आध्यात्मिक साधना के मार्ग में बाधक नहीं बन सकता था। वे राजनैतिक क्षेत्र में अत्यधिक उत्तेजनापूर्ण कार्यों में संलग्न रहे फिर भी अपने चेतन-जीवन के प्रत्येक क्षण में उनकी साधना सतत रूप से चलती रही।

इस साधना का उद्देश्य स्वर्गप्राप्ति या निर्वाणप्राप्ति नहीं बल्कि जीवन और सत्ता का परिवर्तन करना था और वह भी किसी प्रासंगिक के तौर पर नहीं बल्कि विशेष और मुख्य उद्देश्य के तौर पर।

साधना : एक दिव्य एवं भव्य संघर्ष

इस साधना में जिस ध्येय की खोज करनी थी वह व्यक्ति के हित के लिए भगवान के साक्षात्कार की व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं है वरन् अभीप्सित वस्तु है चेतना की वह शक्ति जिसे क्रियाक्षेत्र में उतारना है जो अभी पार्थिव प्रकृति में, यहाँ तक कि आध्यात्मिक जीवन तक में संगठित या प्रत्यक्षतः क्रियाशील नहीं है। फिर भी इतना महान् उद्देश्य प्रारम्भ में अत्यन्त सरल रूप में दिखायी पड़ता है। इसका वास्तविक स्वरूप समझने का प्रयास करते हैं तो जो भव्य दृश्य उभरता है वह कुछ इस प्रकार है—सत्य के अनुसंधान के लिए संघर्षरत एक मानवीय आत्मा किन्तु ज्यों-ज्यों

वह अग्रसर होती है वह महाकाव्य के नायक के रूप में दिखायी देती है जो बाह्य व आन्तरिक विरोधी शक्तियों से मानवता के मार्ग को सुगम बनाने हेतु युद्ध में संलग्न है। वस्तुतः उनकी साधना मस्तिष्क, जीवन व पदार्थ पर अति-मानसिक चेतना के विजय के मार्ग को भावी पीढ़ियों के लिए सुनिश्चित करने के लक्ष्य पर केन्द्रित थी।

अतिमानस की अवधारणा

अतिमानस की अवधारणा के विवेचन के बिना श्री अरविन्द की योग-साधना के वैशिष्ट्य को समझना असम्भव है। उनकी योगपद्धति में इसका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी सरल ढंग से इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है। हम आमतौर पर यह मानकर चलते हैं कि मानव-मन ही हमारे इस इन्द्रियगोचर जगत में अस्तित्व का सर्वोच्च रूप है और यह रूप केवल ईश्वर से ही निम्नतर है। अरविन्द-दर्शन का प्रारम्भ ही इस मान्यता के अस्वीकरण से होता है। उनके अनुसार ईश्वर मानव-चेतना में सीधे नहीं उतरता। ब्रह्म अथवा अतिचैतन्य और मन या साधारण-चैतन्य के बीच एक कड़ी आवश्यक है। इस कड़ी या बीच की सत्ता को श्री अरविन्द अतिमानस कहते हैं। उनके अनुसार केवल अतिमानस के माध्यम से ही मन ब्रह्म तक उठ सकता है और ब्रह्म मन तक उतर सकता है। अतिमानस ब्रह्म के तीनों पक्षों को विभाजित या पृथक् किये बिना ही विकसित करता है। यह व्यापक और सृजनशील है।

वे इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं “वह चेतना शक्ति की एक क्षमता है जो ईश्वर को अभिव्यक्त करती है, ईश्वर से जन्म लेती है और उसके स्वरूप के अंश को प्राप्त करती है। न तो वह शून्य की उपज है, न कल्पनाओं की रचयिता। वह चेतन सत्ता है जो अपने अविनाशी और नित्य पदार्थ को अनित्य रूपों में ढालती है।”^{१३}

अतिमानस के स्तर पर ही वास्तविक बोध

योग-साधना के प्रारम्भिक स्वरूप व अतिमानस की चर्चा करते हुए वे अपने अनुज को लिखे पूर्वोक्त पत्र में लिखते हैं—“पहले मानसिक स्तर पर अनुभूति पाकर, मन को अध्यात्म-रस से प्लावित कर अध्यात्म-प्रकाश से प्रकाशमान करना होता है। इसके बाद ऊपर उठना अर्थात् अतिमानस में उठे बिना जगत् के शेष रहस्य जानना असम्भव है। वहीं आत्मा और जगत्, अध्यात्म और जीवन-द्वन्द्व की अविद्या नष्ट होती है। उस समय जगत् को माया कहकर नहीं देखा जाता। जगत् भगवान की सनातन लीला, आत्मा का नित्य विकास है। उसी समय भगवान को पूर्ण रूप से जान पाना सम्भव होता है। गीता में जिसे “समग्र मां ज्ञानुम” कहा गया है। अन्नमय देह, प्राण, मन, बुद्धि, विज्ञान आनन्द यह हुई आत्मा की पंचभूमि। जितना ऊँचा उठे—मनुष्य के आध्यात्मिक विकास की चरम सिद्धि की अवस्था उतनी ही निकट आती है। अतिमानस में उठने से आनन्द में उठना सहज हो जाता है। अखण्ड अनन्त आनन्द की अवस्था में स्थिर प्रतिष्ठा होती है। केवल त्रिकालातीत परब्रह्म में नहीं—देह में, जगत् जीवन में। पूरी सत्ता, पूर्ण चैतन्य, पूर्ण आनन्द विकसित होकर जो जीवन में मूर्त होता है—वह चेष्टा मेरे योग-पन्थ का मूल सूत्र है।”^{१४}

अतिमानस में उठना दुःसाध्य

यद्यपि श्री अरविन्द परब्रह्म के चैतन्य की अनुभूति के लिए अपनी साधना में अतिमानस को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान देते हैं किन्तु इसकी प्राप्ति एक दुष्कर कार्य है, ऐसा वे स्वयं स्वीकार करते हैं। वारीन को लिखे गये पत्र में वे बताते हैं—“इस प्रकार होना सहज नहीं। इन पन्द्रह वर्षों के बाद में केवल मानस के तीन स्तरों के निम्नतर स्तर में पहुँचकर नीचे की सभी वृत्तियों को उसमें खींचकर लाने के लिये उद्योगरत हूँ। जब यह सिद्धि पूर्ण होगी तब भगवान मेरे द्वारा दूसरों को अल्प आयास में अतिमानस की सिद्धि देंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं। तभी मेरा असली कार्य प्रारम्भ होगा। मैं कर्मसिद्धि के लिए अधीर नहीं हूँ। जो होना है भगवान के निर्दिष्ट समय में होगा। उन्मत्त की तरह दौड़कर क्षुद्र ‘अहं’ की शक्ति से कर्मक्षेत्र में कूद पड़ने की मेरी प्रवृत्ति नहीं है। यदि कर्मसिद्धि नहीं हो तो भी धैर्यच्युत नहीं हूँगा। यह काम मेरा नहीं, भगवान का है।”^{१५}

सच्चे अर्थों में पूर्णता की ओर अभिमुख

श्री अरविन्द ने पार्थिव जीवन के दिव्यकरण हेतु जो साधना-पद्धति अपनायी और विकसित की उसे पूर्ण-योग सत्य ही कहा गया है। यह केवल सम्पूर्ण और व्यापक होने के अर्थ में ही पूर्ण न होकर, इस अर्थ में भी पूर्ण है कि इसमें योग और अन्य साधना-पद्धतियों के अत्यधिक गतिशील एवं स्थायी पहलुओं का संश्लेषण किया गया है। गुह्य एवं अन्य पहलुओं का महत्व क्षीण कर दिया गया है और मुख्यतः आध्यात्मिक पहलू पर बल दिया गया है। इसे



आधुनिक शब्दावली में प्रस्तुत किया गया है ताकि लोग इसे भली-भाँति समझ सकें। सर्वोपरि, यह योग को एक सामाजिक उद्देश्य प्राप्ति का साधन बनाना चाहती है किन्तु किसी संकीर्ण अर्थ में नहीं, वरन् समस्त मानवता के दिव्यकरण के व्यापक अर्थ में।

उनकी अपूर्व उपलब्धि यह है कि जिस समय अन्य लोग विश्व दृष्टियों और अभिवृत्तियों के बारे में सामान्य रूप में चर्चा करके ही सन्तुष्ट थे, उन्होंने एक सम्पूर्ण और व्यापक पद्धति का निर्माण किया। उन्होंने दर्शन के सभी परम्परागत प्रश्नों के उत्तर दिये हैं, उन्होंने 'क्यों' और 'कैसे' की, पाप और दुःख के अस्तित्व की, मानव ज्ञान के स्रोतों व प्रकारों की, मूल्यों के स्वरूप की व्याख्या करने का प्रयास किया है। उनका ध्यान इस बात पर इतना नहीं है कि हमारा उत्तराधिकार क्या है अथवा कि आज हम क्या हैं बल्कि इस पर है कि हमें अभी क्या होना है? यही कारण है कि वे अनन्त आशावाद का सन्देश देते हैं। पलायनवाद और निवृत्तिपरकता को आध्यात्मिक अभिनति का लक्षण स्वीकार नहीं करते।

समकालीन युग में सभी प्रकार की संकीर्णताओं जो कि तथाकथित आध्यात्मिकता के नाम पर प्रचलित हैं, से ऊपर उठकर महायोगी श्री अरविन्द ने एक ऐसे विश्व-समाज का निर्माण करने हेतु अपनी साधना की जहाँ मानव एकता का आदर्श सभी प्रकार से साकार रूप ग्रहण कर सकेगा। एक ऐसा समाज जिसमें दिव्य चेतना का अवतरण होने के फलस्वरूप तनाव एवं वैमनस्य को जन्म देने वाली प्रवृत्तियों का सर्वथा लोप हो जायेगा और होगी एक अविचल अखण्ड शान्ति जिसमें जीवन की सार्थकता का अनुभव हो सकेगा।

सन्दर्भ और सन्दर्भ स्थल

- १ आर. आर. दिवाकर—महायोगी (अंग्रेजी), पृ० १६३
- २ रामधारीसिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ६१६
- ३ आर. आर. दिवाकर—'महायोगी' में उद्धृत, पृ० १२८-१२९
- ४ जीन हर्बर्ट—पायनियर आफ सुप्रामेन्टल एज, पृ० ६०
- ५ दिलीपकुमार राय—'तीर्थकर'—आर. आर. दिवाकर कृत 'महायोगी' के पृ० १६५ पर उद्धृत।
- ६ श्री अरविन्द इवनिंग टाक्स—द्वितीय भाग, पृ० २२४
- ७ आर. आर. दिवाकर—पूर्वोक्त, पृ० १३१
- ८ शिवप्रसादसिंह—उत्तरयोगी, पृ० ३४२
- ९ माधव पंडित—साधना इन श्री अरविन्दो ज योग, पृ० ३१-३२
- १० श्री अरविन्द—अपने तथा माताजी के विषय में पृ० ७५
- ११ श्री अरविन्द लेटर्स, भाग २, पृ० ७
- १२ सत्प्रेम—श्री अरविन्दो ऑर द एडवेंचर आफ कॉन्शियसनेस पृ० ६३
- १३ श्री अरविन्द—द लाइफ डिवाइन, पृ० १७७
- १४ श्री अरविन्द द्वारा वारीन को ७ अप्रैल, १९२० को लिखा पत्र—शिवप्रसादसिंह कृत 'उत्तरयोगी' के पृ० २३५ पर उद्धृत।
- १५ उपर्युक्त वही, पृ० २३५

★★★